सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

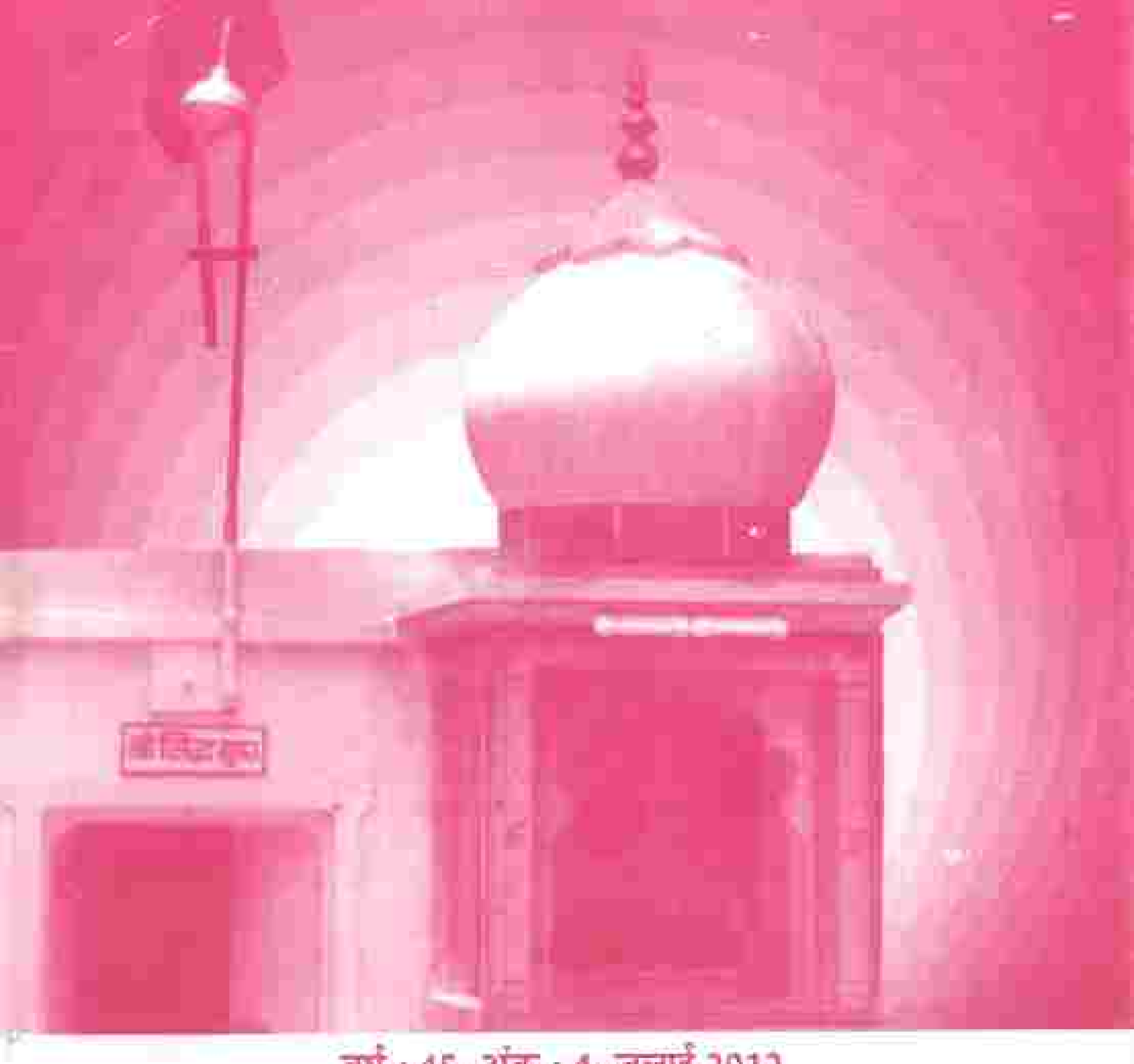

वर्ष : 45, अंक : 4, जुलाई 2012

अमृत कण

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

◆ ◆ ◆

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।

(मुण्डकोपनिषद् 1/2/10)

इष्ट और पूर्त सकाम कर्मों को ही श्रेष्ठ मानने वाले अत्यन्त मूर्ख लोग उससे भिन्न वास्तविक श्रेय को नहीं जानते, वे पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग के उच्चतम स्थान में जाकर श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप वहाँ के भोगों का अनुभव करके इस मनुष्य लोक में अथवा इससे भी अत्यन्त हीन योनियों में प्रवेश करते हैं।

◆ ◆ ◆

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः ततः तेन अमृतत्वम्।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् 1/6)

इस सबके जीविकारूप सबके आश्रयभूत विस्तृत ब्रह्मचक्र में जीवात्मा को घुमाया जाता है। वह अपने आपको और सबके प्रेरक परमात्मा को अलग–अलग जानकर उसके बाद उस परमात्मा से स्वीकृत होकर अमृत भाव को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/11)

परमात्मा की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले योग में पहले कुहरा, धुँआ, सूर्य, वायु और अग्नि के सदृश तथा जुगनू, बिजली, स्फटिक–मणि और चन्द्रमा के सदृश बहुत से दृश्य योगी के सामने प्रकट होते हैं। ये सब योग की सफलता को स्पष्ट रूप से सूचित करने वाले हैं।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 जुलाई 2012 अंक : 4

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला–
द्युतिनीराजित पादपंकजान्त।
अयि मुक्तकुलैकपास्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि।।

सम्पूर्ण उपनिषद्रूप रत्नमाला की कान्ति के द्वारा तुम्हारे चरणकमलों का नखरूप प्रान्तभाग नीराजित हो रहा है और संसार से मुक्त (नारद–सनकादि) मुनि तुम्हारी उपासना में लगे हैं। इस प्रकार हे श्री हरिनाम! मैं तुम्हारा आश्रय लेता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दाललाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	क्रियायोग से अन्तःकरण शुद्धि – डॉ.जे.पी. शर्मा	9
4.	गीतामृत–पदावली	12
5.	योगआसन – पादहस्तासन	15
6.	सिद्धयोग की भूमिका – श्री डॉ. विजय सिंह	17
7.	साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर	19
8.	मेरे दाता मेरे गुरुवर – विजय कुमार शर्मा	23
9.	श्री शीतल शर्मा दम्पति पर कृपा	24
10.	काल का प्रभाव और मानव जीवन की अनित्यता	28
11.	मृत्यु के विषय में – राम रतन तिवारी	30
12.	रामायण में यज्ञ की महत्ता – आचार्य श्री राम शर्मा	33
13.	लक्ष्य – श्री रामलाल शर्मा	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

योगियों का सिद्ध रस

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग-साधना का उद्देश्य होता है आत्म तत्व को जानकर ब्रह्म-तत्व पा लेना। इसी ब्रह्म-तत्व को शुद्ध परमात्म-तत्व भी कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने इसी परमात्म-तत्व को 'पुरुष विशेष ईश्वरः' कहकर इंगित किया है। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि क्लेश, कर्म, विपाक-आशय से जिसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, वही पुरुष ईश्वर अथवा परमात्म-तत्व कहा जाता है। क्लेश, कर्म, विपाक-आशय से तो जीवात्मा का चिरकालिक सम्बन्ध चला आ रहा है – परमात्म-तत्व का इनसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा न कभी आगे रहना सम्भव है। समाधि पाद के 25वें सूत्र में इस पुरुष विशेष की एक और परिभाषा करते हुए सूत्रकार ने कहा है –

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

अर्थात् उस ईश्वर-पुरुष विशेष में –सर्वज्ञता का बीज यानी ज्ञान निरतिशय है। उससे बढ़कर अथवा उसके समान सर्वज्ञता और किसी में भी नहीं है इसीलिए उसे अद्वितीय और अनुपम भी कहा गया है। श्रुति में भी

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्ता। य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् मन से बारम्बार चिन्तन करके ध्यान में लाया हुआ वह परम पुरुष परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है। जो इसको जानते हैं अमृत स्वरूप हो जाते हैं, यानी वे परमानन्द रूपी रस का पान करके कृतार्थ हो जाते हैं। उन्हें फिर जन्म-मरण के पाशों में आना नहीं पड़ता। लेकिन यह स्थिति आती तब है जब साधक की साधना सतत् और निरन्तर गतिशील रहकर अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती है। योगदर्शन के समाधि पाद के सूत्र 14 – 'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारा-सेवितो दृढ़भूमिः' की स्थिति को पा लेता है। सूत्र के अनुसार आदर श्रद्धा और प्रेम के साथ बिना किसी व्यवधान और अवरोध के साधक जब साधना की यह दृढ़भूमि प्राप्तकर लेता है तब ही वह परम-तत्व परमात्मा रूपी आनन्द रस का पान करने का सुअवसर पा सकता है। उपासना-योग, भक्ति योग अथवा ईश्वर प्रणिधान द्वारा भी साधक तब तक अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाता जब तक कि वह साधना की दृढ़भूमि पर अपने पैर नहीं जमा लेता। साधक साधना की दृढ़ भूमि पर पहुँच गया है इसका परिचय उसके आचरण और व्यवहार से हर समय मिलता रहता है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीमद् भगवद् गीता में आनन्द रूपी अमृत का पान कर सकने वाले भक्ति-योग

के साधक के लक्षण बताते हुए कहा है –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति– मान्मे प्रियो नरः।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।

अर्थात् जो शत्रु–मित्र में और मान अपमान में, सत्कार और तिरस्कार में समान रहता है एवं शीत उष्ण और सुख–दुःख में भी समभाव वाला है तथा सर्वत्र आसक्ति से रहित हो चुका है। निन्दा और स्तुति जिसके लिए बराबर हो गई है जो मुनि मननशील संयतवाक् है, अर्थात् वाणी जिसके वश में है, जो सब प्रकार से सन्तुष्ट है, समस्त तृष्णा से जो निवृत्त हुआ है जो स्थान रहित, अर्थात् किसी स्थान से जिसे मोह नहीं है तथा जो स्थिर बुद्धि है और परमार्थ में जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है ऐसा उपासक साधक मुझे प्रिय है। क्योंकि ऐसे भक्त या साधक ही धर्मामृत पान के अधिकारी होते हैं।

जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुछ इसी प्रकार की बात पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक संख्या 5 में ज्ञाननिष्ठ साधक के सम्बन्ध में कही है। वे कहते हैं –

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदु खसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

यानी जो मान–मोह से मुक्त हैं, जिनका अभिमान और अज्ञान नष्ट हो चुका है जो मान मोह से रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है। जो नित्य अध्यात्मिक विचार में रत रहते हैं, जो कामनाओं से रहित हैं जो द्वन्दों से छूटे हुए हैं, ऐसे साधक उस परम–तत्त्व के परमानन्द रूप पद को प्राप्त कर पाने के अधिकारी होते हैं।

यही वह तेजोमय परम पद है जहां जाकर साधक को फिर जन्म मरण के बन्धन में नहीं लौटना पड़ता। यही परम–तत्व अव्यय और अक्षर कहलाता है। वेदों में इसी तत्व को आपः ज्योतिः रसः और अमृत कहकर इंगित किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं – 'रसो वै सः' अर्थात् वह परम तत्व रस रूप है 'रस' शब्द का अर्थ है आनन्द। यः रसयति आनन्दयति स रसः। जो आनंदित करता है उसे रस कहते हैं। जगत में जो कुछ रस है वह परमात्मा अथवा ब्रह्म का ही रस है इसीलिए उसे रसघन या रसों का महासमुद्र भी कहा गया है। योगीजन समाधि में इसी रस अथवा आनन्द का पान किया करते हैं – यह ब्रह्मानन्द अथवा ब्रह्म रस ही उनका सिद्ध रस अथवा अमृत होता है। इस सिद्ध–रस पान से परितुष्ट होकर ही वे सिद्धयोगी की पदवी पा जाया करते हैं। वसुन्धरा को भी रस से परिपूर्ण होने के कारण रसा

कहकर पुकारा गया है, जो वनस्पति आदि के माध्यम से समस्त प्राणि–जगत को सरस बनाती है। संसार में जितनी भी सरसता दिखलाई पड़ती है वह सबका उद्गम वह रसघन परमब्रह्म परमात्मा ही है। पर, इस तथ्य को कितने जन जान पाते हैं कि यदि जीवन को सरस और सुखद बनाना है तो हमें स्वयं इसी ब्रह्मरस अथवा सिद्धरस से अपने को परितृप्त करना होगा। बिना अपनी तृप्ति अथवा तुष्टि किये तुम औरों को परितृप्त कैसे कर सकोगे। प्रभु का आदेश है कि तुम जीभरकर इस आनन्द रूपी महारस का स्वयं पान करके औरों को भी इसे पान करने के लिए प्रेरित करो। तुम्हारे मानवीय कर्तव्यों की श्रृंखला की यह भी एक कड़ी है कि तुम देवासुर–संग्राम की तरह इस रस–सागर में से सर–कलश को भरकर केवल अपने लिए ही ले जाने की कोशिश मत करो किन्तु लोकहित के लिए इसे सभी दिशाओं में प्रवाहित कर दो। सिद्धयोगियों की ऐसी ही परम्परा होती है। अपने लिए नहीं किन्तु लोक–कल्याण के लिए ही वे नर देह धारण करके पृथ्वीतल पर आते और अपने सहज धर्म के रूप में कर्तव्य पालन करके पुन: अपने निज लोक को लौट जाया करते हैं। हम सबके परम पूज्य योगयोगेश्वर महाप्रभुजी ऐसी ही दिव्यात्माओं से हैं, जिनके सम्बन्ध में योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है –

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।

अर्थात् हे पार्थ तीनों लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है क्योंकि मुझे कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है तो भी मैं कर्मों में वर्तता हूँ।

सिद्धयोगियों का लक्षण भी यही है कि वे पीड़ित और दुःखी जनों की कल्याण कामना के लिए कालक्रमानुसार इस भूतल पर विमुक्त और विदेह होते हुए भी नर देह धारण करके अवतरित होते रहते हैं। हमारे देश में महान अवतारों के अवतरण का उद्देश्य भी तो यही था। महान आत्माओं, सिद्धयोगियों अथवा श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण ही तो लोक के लिए आदर्श बना करता है। महाप्रभुजी का करुणा से ओत–प्रोत लोक जीवन योग मार्ग के सभी साधकों के लिए आदर्श और अनुकरणीय जीवन के रूप में हम सबके सामने है। उनकी शिक्षा और आदर्शों को आत्म–सात करके ही सतत् योग साधना, त्याग एवं वैराग्य की भावना को संबल बनाकर ही तुम इस भूतल के सार उस सिद्ध रस के पान करने के अधिकारी बन सकते हो जिसका अपर नाम आनंद और अमृत है। बिना इस आनन्द के न कोई आनन्दित रह सकता है न औरों को आनंदित करके अपने मानवोचित कर्तव्य का पालन कर सकता है। अत: भगवान कृष्ण के इन शब्दों को सदा याद रखो– **रसोहमप्सु कौन्तेय, प्रभास्मि शशि सूर्ययो।**

परमप्रभु रस रूप है ज्योतियों की ज्योति है, अत: तुम इसी रस और ज्योति से अपने आत्मतत्व को परितृप्त और जाग्रत एवं जगमग करने की सहज चेष्टा करते रहो – तुम्हारी साधना का यही लक्ष्य होना चाहिए।

● ● ●

गुरु पूर्णिमा का अमृतमय पर्व

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा – व्यास पूजा का पावन पर्व आषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्‌भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है। बशर्ते व्यक्ति उस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है –

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द 'गृ' शब्दे (क्र्यादिगण) तथा गृ निगरणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। 'गृणाति उपदिशति धर्मतिमति–गुरुः'' जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। ''यद्रा गीर्यत स्तूयते देवगन्धर्वा दिभिरिति गुरुः।'' अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। ''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'' –(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्मपूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। ''पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।'' अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वै सः'' कहकर ब्रह्म को रसरूप माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है। अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्त्रोत होता है। भगवान का

अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं तब वे अपने सदुपदेश से अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मल के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोग वश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्‌भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। इन में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर "मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव" – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है– ऐसा गुरुगीता का वचन है। "नास्ति तत्वं गुरोः परम" गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीव और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है –

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप गुरु ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मन्त्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्म शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है – "गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्याद् कदाचन"। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मन्त्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता। इस बार गुरु – पूर्णिमा 3 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृतपर्व को अत्यन्त धूम धाम से मनावें ताकि उन्हें भुक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो।

जय गुरुदेव!

● ● ●

मनोनिग्रह का अभ्यास

गीता की यह शिक्षा कि सच्चा सन्यास आसक्ति रहित कर्म में है, संसार का त्याग करने में नहीं, कोई ऐसी उपपत्ति नहीं है, जिसे संसार का त्याग करने के अनिच्छुक लोगों के समर्थन अथवा सफाई के लिए प्रस्तुत किया गया हो। यह मनुष्यों के जीवन को प्रत्यक्षतः गढ़ने के लिए आधार के रूप में प्रतिपादित की गई है, जिससे कि उनमें निःस्वार्थता और अलिप्तता की आदत तथा स्फूर्ति विकसित हो। बत्तख पानी में तैरती है, परन्तु बाहर निकलने पर अपने शरीर का सब पानी झाड़ देती है। हमें उसी के समान संसार में रहना सीखना चाहिए। हमारे काम में दक्षता, सुघरता और कुशलता का अभाव न हो और फिर भी हम स्वार्थपूर्ण आसक्ति को विकसित न होने देने के लिए सतर्क रहें। अलिप्तता का यह भाव कायम रखने के लिए मनोनिग्रह का सतत् अभ्यास आवश्यक है।

क्रिया योग से अन्तःकरण शुद्धि

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

महर्षि पतंजलि महाराज ने योग दर्शन में क्रिया योग के बारे में कहा है कि मनुष्य को अन्तःकरण की पवित्रता रखने के लिए क्रिया योग नित्य के जीवन में अपनाना चाहिए। इससे परमात्मा की प्राप्ति सहज हो जाती है। प्रभु प्राप्ति के लिए अन्तःकरण का शुद्ध होना अत्यावश्यक है। परमपिता परमात्मा हर तरह से पवित्र होते हैं उनमें कोई विकार नहीं होता। विकार तो सारी जिन्दगी जीव ही ढोता है। अतः क्रियायोग क्या है? इसके विषय में कहा है –

तपः स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि क्रिया योगः॥

(यो.सा.पा.2/1)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान ही क्रियायोग है।

(1) **तप :** अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति तथा योग्यता के अनुसार अपने धर्म का पालन करना तथा उसके पालन में शारीरिक, मानसिक कष्टों को सहन करना, त्यौहारों, पर्वों पर व्रतोपवास सेवन आदि को तप कहा जाता है। निष्काम भाव से इनके पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। गीता का कर्मयोग यही कहता है। द्वन्दों का सहन करना भी तप कहा गया है।

(2) **स्वाध्याय :** सद्ग्रन्थों का अध्ययन, मनन, एकान्त में बैठकर गीता, रामायण, शिवपुराण, देवों के स्त्रोत, प्रार्थना, चालीसा आदि का अर्थ सहित पठन, पाठन तथा अनुकरण करना ही स्वाध्याय कहा गया है। प्रणवजप, अपने गुरुमंत्र, अन्य देवी देवों के मंत्रों का अर्थ सहित जपना सब स्वाध्याय ही कहा गया है। ऐसे ग्रन्थ जिनके पढ़ने, लिखने, जपने से आत्मोन्नति प्राप्त हो जिनके कारण मन शान्त तथा निश्चल रहे, से सदैव अन्तःकरण पवित्र ही नहीं होता अपितु मानव को परमात्म लाभ भी देता है।

(3) **ईश्वर प्राणिधान :** जब मानव अपने सम्पूर्ण कर्मों का फल अपने इष्ट को, या भगवान को समर्पण कर देते हैं, उसे ईश्वर प्राणिधान कहा जाता है। जो कुछ मानव कर रहा है, उसके फल की इच्छा न करके, ईश्वर में पूर्ण विश्वास के साथ समर्पण भाव से करता है, उसे ईश्वर शरणागति या ईश्वर प्राणिधान कर्म कहा गया है। भगवान या अपने इष्टदेवों का नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन, भजन, मनन करना तथा सारे कर्मों को भगवान के समर्पण कर देना, अपने को भगवान का खिलौना समझना, जैसे वह चाहें वैसे नचावे, वैसे ही नाचना, उसकी सदैव आज्ञा पालन करना तथा उसी में हर क्षण हर पल प्रसन्न रहना – ये सब क्रियायें ईश्वर प्राणिधान ही हैं। इस भावना से मन वश में किया जा सकता है।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात तन्मया:।

इन श्रुति और भक्तिशास्त्र के सिद्धान्त वचनों से भगवान, ज्ञानी तथा भक्तों की एकता सिद्ध होती है। श्री भगवान और भक्तों के प्रभाव और चरित्र के चिन्तनमात्र से मन आनन्द से भर जाता है। क्रिया योग के अंगों के बारे में कहा गया है –

गंगा श्री विष्णु पूजा च दानानि द्विजसत्तम्।
ब्राह्मणानां तथा भक्तिर्भक्तिरेकादशीव्रते।।
धात्रीतुलस्योर्भक्तिश्च तथा चातिथिपूजनम्।
क्रियायोगाँगभूतानि प्रोक्तानीति समासत:।।

भगवान की अनेकों विधियों से पूजा–अर्चना सुबह, सायं तथा दोपहर करना क्रियायोग का मुख्य अंग है। शास्त्रों में क्रियायोग का विस्तृत वर्णन है। क्रियायोग की पद्यति कल्याणकारी होती है। क्रियायोग के आदि उपदेष्टा भगवान नारायण हैं। ब्रह्म, भृगु से यह परंपरा चली हुई है। भगवान शंकर ने माता पार्वती को क्रियायोग का उपदेश किया था। क्रिया योग सभी आश्रमों के लिए है। भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव जी को क्रियायोग का उपदेश करते हुए कहा था –

प्रिय उद्धव! क्रियायोग (कर्मकाण्ड) का बहुत विस्तार है। मेरी पूजा की तीन विधियाँ हैं। वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्रित। साधक को अपने रुचि तथा सुविधानुसार इन तीनों में से किसी को अपनाकर पूजा करनी चाहिए। प्रात: नित्य के कर्मो से निवृत्त होकर विधि विधान से पूजा–अर्चना करनी चाहिए। मेरी मूर्तियां आठ प्रकार की कही गयी हैं। – पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, मिट्टी की, चन्दन आदि की, चित्रमयी, बालुकामयी, मनोमयी तथा मणिमयी। प्रतिमा भी चल–अचल दो प्रकार की होती हैं। अचल प्रतिमा में आवाहन – विसर्जन नहीं होता। सकाम भाव तथा निष्काम भाव – इन दोनों भावों से भक्त मेरी उपासना करते हैं। पूजा भावना से ही करनी चाहिए। भक्त की श्रद्धा के बिना मैं उसकी पूजा स्वीकार नही करता परंतु श्रद्धापूर्वक मेरा भक्त केवल जल अथवा पत्ता भी अर्पण करता है, मैं उससे प्रसन्न हो जाता हूँ। तभी तो कहावत है– "भाव के भूखे हैं भगवान"। यदि कोई भक्त श्रद्धा भक्ति पूर्वक गन्ध,पुष्प, धूप, दीपादि से समर्पण के साथ मेरी आराधना करता है तो उसका तो कहना ही क्या ? –

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते।
गन्धो धूप: सुमनसो दीपोऽन्नाद्यंच किं पुन:।।

(श्री मद्‌भगवतगीता 11/27/18)

उपासक पूजा सामग्री लेकर कुश के आसन पर पूर्व या उत्तर की तरफ मुँह करके बैठ जाय। विधि पूर्वक अंग न्यास एवं करन्यास कर जलपूर्ण कलश की गन्ध–पुष्प आदि से पूजा करें। अपने ऊपर पवित्र जल छिड़कें। शिखा बन्धन आदि करें। विधि पूर्वक पूजा करें। बाद में मानसिक पूजा अर्पित करें तथा अंगन्यास करें आदि–आदि। सुदर्शनचक्र पांचजन्य, शंख,

कौमोद की, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल – इन आठों आयुधों की पूजा आठ दिशाओं में करें। कोस्तुभमणि, वैजयन्तीमाला तथा श्रीवत्स चिन्ह की पूजा वक्ष स्थल पर यथा स्थान करें। नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद तथा कुमुदेक्षण – इन आठों पार्षदों की आठ दिशाओं में गरूड़ के सामने, दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वकसेन की चारों कोनों में स्थापना कर पूजा करें। बायीं ओर गुरु की तथा पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करें।

यज्ञोपवीत, चन्दन, आभूषण, माला, वस्त्रादि अलंकारों से भगवान को अर्पित करें। विविध व्यंजनों का नैवेद्य अर्पित करें। पंचामृत का भोग लगावें।

शान्तचित्त होकर सीधे आसन बैठकर मंत्रजाप करें। 'ॐ नमो नारायणाय' का जप सभी के लिए उत्तम कहा गया है। साधक अपने–अपने इष्ट देवों के बताये मंत्रों का जाप कर सकते हैं। अन्त में साष्टांग प्रणाम अर्पित करें। प्रार्थना करें मेरा कल्याण करें भगवन! मैं मृत्यु के भँवर में फंसा हुआ हूँ अथाह सागर में डूब रहा हूँ, मृत्यु प्रतिक्षण मेरा पीछा कर रही है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। 'हे नाथ मेरी रक्षा कीजिए –

प्रपन्नं याहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्।।

ऐसी प्रार्थना के बाद मुझे समर्पित पुष्प, फूलमाला, आदि आदरपूर्वक लेकर अपने मस्तक से लगावें तथा गले में धारण करें। उसे मेरा दिया प्रसाद समझें।

भगवान श्री कृष्ण जी महाराज कहते हैं, उद्धव जी! प्रतिमा आदि में जब भी श्रद्धा पैदा हो उसी में मेरी उपस्थिति समझ कर मेरी पूजा करनी चाहिए। मैं सर्वात्मा हूँ तथा सब प्राणियों तथा सबके दिलों में स्थित हूँ। इस प्रकार क्रियायोग से जो भी मेरी पूजा करता है, वह इस लोक तथा परलोक में मुझ से परम सिद्धि प्राप्त करता है। निष्काम भाव से पूजा करने वाले को भक्तियोग प्राप्त होता है। अन्त में वह भक्त मुझे ही प्राप्त होता है। क्रियायोग में भगवान की आराधना में मंदिर तथा देवालयों का निर्माण, प्रतिमा स्थापन, फूल आदि के बगीचे लगवाना, रथयात्रा, शोभायात्रा निकालना तथा विभिन्न प्रकार के उत्सवों की व्यवस्था करना, मंदिर आदि के लिए भूमिदान करना, सभी पुण्य काम सम्मिलित हैं। अतः क्रियायोग के सारे कार्य भगवद्उद्देश्य से ही किये जाते हैं। प्रतिदिन घरों में देवी, देवताओं तथा इष्टों व सद्गुरुदेवों की पूजा, अर्चना आदि क्रियायोग में ही आते हैं। ऐसे समर्पण भाव से किये जाने वाले नित्य के पूजन, भक्ति से प्राणी तन मन से ओतप्रोत रहता है। उस पर सभी देवों की कृपा रहती है। अपने जीवन में अनेकों सफलतायें प्राप्त करता है। उस पर सद्गुरुदेवों की अपरोक्ष कृपा वर्षा हुआ करती है। इस प्रकार मानव अपने जीवन में कृतकृत्य हो जाता है।

पूज्य सद्गुरु देव श्री श्री 1008 श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरणकमलों में मेरा कोटि कोटि प्रणाम। सभी गुरु भाइयों को जयगुरुदेव।

● ● ●

गीतामृत पदावली

(गतांक से आगे)

मुझमें बुद्धि लगाओ अपनी रखकर मन में दृढ़ निश्चय।
मुझको होंगे प्राप्त, न इसमें है किंचित भी संशय।। 8।।

मुझमें मन अविचल रखने का हो न सके यदि सफल प्रयास।
इच्छा करो मुझे पाने की, करते हुए योग-अभ्यास।। 9।।

कर तू कर्म मुझे पाने का, हो न सके यदि योगाभ्यास।
करते-करते इन कर्मों को, होगा तेरा सफल प्रयास।। 10।।

सम्भव तुमको हो न सके यदि मेरी प्राप्ति – रूप यह योग।
कर्म-फलेच्छा को तज दे तू, करके आत्म-दमन-उद्योग।। 11।।

ज्ञान श्रेष्ठ अभ्यास-योग से, तथा ज्ञान से बढ़कर ध्यान।
फल का त्याग ध्यान से उत्तम, जिससे मिलती शांति निदान।। 12।।

नहीं किसी से द्वेष जिसे है, करुणा-मैत्री जिसकी टेक।
अहंकार-ममता न जिसे है, क्षमाशील, सुख-दु:ख में एक।। 13।।

संतुष्ट सदा है जो मन में रहे मुझी में ही अनुरक्त।
दृढ़ निश्चय और संयम वाला है प्यारा वह मुझको भक्त।। 14।।

क्लेश न जिससे पाता कोई, नहीं किसी से दुख जिसको।
क्रोध-हर्ष-भय-शोक-रहित जो वही भक्त है प्रिय मुझको।। 15।।

* * *

इच्छा–रहित, पवित्र, कुशल हो, उदासीन हो, व्यथित न हो।
सर्वारम्भ–परित्यागी हो, उसको मम प्रिय भक्त कहो।। 16।।

हर्ष न द्वेष जिसे होता है, शोक न इच्छा जिसे रही।
अशुभ तथा शुभ त्याग दिया हो, प्रिय है मुझको भक्त वही।। 17।।

शत्रु–मित्र का भेद न रखता, सम है जिसे मान–अपमान।
संगहीन है, जिसको सुख–दुख, सर्दी–गर्मी एक समान।। 18।।

जिसको स्तुति निन्दासम हैं कुछ भी पाकर जो संतुष्ट।
गृह–विहीन स्थिर–मति–मौनी वह प्यारा है मुझको भक्त।। 19।।

इस धर्म्यामृत का, हे अर्जुन! विधिपूर्वक जो करते पान।
श्रद्धायुत, अनुरक्त सदा ये, हैं मेरे प्रियभक्त महान।। 20।।

(श्रीगीतामृत–पदावली ' का भक्ति–योग नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण)

अध्याय – 13

श्री भगवानुवाच
कौन्तेय यह तन क्षेत्र है, ज्ञानी बताते हैं यही।
जो जानता इस क्षेत्र को, क्षेत्रज्ञ कहलाता वही। 1।

हे पार्थ! क्षेत्रों में मुझे क्षेत्रज्ञ जान महान तू।
क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र का, सब ज्ञान मेरा जान तू।। 2।।

जो है क्षेत्र और वह जैसा, जो–जो उसमें पार्थ! विकार।
वह जो है, प्रभाव जो उसका, सुन ले मुझसे उसका सार।। 3।।

पृथक्-पृथक् छन्दों में इसको ऋषियों ने बहुधा गाया।
हेतु दिखाकर, निश्चय करके, ब्रह्म-सूत्र में बतलाया।। 4।।

पंचभूत सब तथा बुद्धि भी, अहंकार, अव्यक्त अजय।
दस इन्द्रियाँ तथा एक मन, इन्द्रियगण के पाँच विषय।। 5।।

इच्छा, द्वेष, चेतना, अर्जुन! सुख-दुख, धैर्य तथा संघात।
यही जान ले थोड़े में, यह क्षेत्र विकार-सहित है ज्ञात।। 6।।

अभिमान, दंभ, अभाव, अर्जुन शौच हिंसा-हीनता।
थिरता, क्षमा, निग्रह तथा आचार्य – सेवा दीनता।। 7।।

(क्रमशः)

● ● ●

बीता हुआ क्षण फिर हाथ नहीं आता। यदि तुम मानव-जीवन की अमूल्यता को भूलकर इसे व्यर्थ और अनर्थ के कार्यों में लगाया रखोगे तो तुम्हारे समान मूर्ख और कोई नहीं होगा; क्योंकि तुम मिले हुए अपने परम लाभ के समय को व्यर्थ खो रहे हो और ऐसे कर्म कर रहे हो, जिनका परिणाम इस बहुमूल्य समय का नष्ट हो जाना – इस सुअवसर का छिन जाना ही नहीं होगा, वरं जन्म-जन्म तक आसुरी योनि और भीषण नरकयन्त्रणा की प्राप्ति होगी। फिर रोने-धोने से कुछ भी नहीं होगा। अतएव अभी से चेत जाओ और अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भगवत्प्राप्ति के साधन में लगाकर जीवन को सफल करो।

स्वास्थ्य

योग - आसन

पादहस्तासन

विधि

समभाव से सीधे खड़े हो जायें व अपने दोनों हाथों को पीठ की ओर से घुमाकर आगे की ओर नीचे को झुकाते लायें व धीरे–धीरे अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लीजिये, किन्तु पैर यत्किंचित भी झुकने न पायें। पीठ झुककर गोलाकार बन गई हो व शिर दोनों हाथों के बीच आ गया हो। इसी को पादहस्तासन कहते हैं। निरन्तर के अभ्यासी लोग इसे खड़े होकर करते हैं।

दूसरा रूपक खड़ा पश्चिमोत्तान – अभ्यासी लोग इसी को खड़े होकर किये जाने

वाले पश्चिमोत्तान का ही रूपक बना लेते हैं। अभ्यासियों के लिए सभी कुछ सम्भव है। इस आसन को बढ़ा लेने पर दोनों हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़े रहने पर भी शिर दोनों जानुओं का स्पर्श करता है। किन्तु पैरों के तनाव में कोई भी कमी नहीं आती। इस प्रकार स्थिति खड़े होकर किया जाने वाला पश्चिमोत्तान की आ जाती है। इससे भी अधिक अभ्यासी अपने सिर को दोनों घुटनों के बीच में ले जाते हैं व दोनों हाथों को पैरों के बिल्कुल बराबर लाकर हथेलियाँ जमीन में

जमा देते हैं।

तीसरा रूपक उष्ट्रासन खड़ा – इसी पादहस्तासन का निरन्तर अभ्यास करने वाले इसको खड़े हुए ऊँट के रूपक से भी करते हैं। दोनों पैरों को थोड़ा खोलकर रखें, दोनों हाथों को बिल्कुल सीधे पैरों में डेढ़ या बालिश्त की दूरी पर हथेलियाँ जमाकर रखें, गर्दन को थोड़ा ऊँचा कर सामने देखें। यही खड़े हुए ऊँट का रूपक है। कुछ भी हो इन सभी विधियों से किया जाने वाला यह पादहस्तासन बहुत ही गुणकारी है।

करने का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर प्रथम अभ्यास आधे मिनट से ही अभ्यास करें व शनैः शनैः आधा–आधा मिनट व अभ्यास बढ़ने पर प्रतिदिन एक–एक मिनट भी बढ़ाया जा सकता है। साधारण रूपक से जहाँ आसनों की क्लासें लगती हैं, वहाँ यह आसन शिक्षक के बताये कायदे से एक मिनट या आधा मिनट ही अभ्यसनीय है। अन्य स्थिति में इसी का विशेष अभ्यास बढ़ता जा रहा हो तो अपने शरीर के बलाबल को देखकर प्रत्येक रूपक से दो या तीन मिनट करने पर यह अपना परिणाम दिखलायेगा।

लाभ – यह आसन बहुत ही लाभप्रद है। इसके करने से पैरों के पीछे के नाड़ी समूह में तनाव पड़ता है। अतः उन सभी नाड़ियों को पूरा–पूरा बल देता है। यकृत एवं प्लीहा (जिगर व तिल्ली) की बीमारियों को पूर्णतः लाभ पहुँचाता है। आँतें अपना–अपना काम ठीक–ठीक करने लगती हैं। पेट में बनने वाली वायु को रोकता है। जठराग्नि बढ़ती है। क्षुधा खूब बढ़ती है। स्थूलता दूर होकर पेट में कृशता आती है। चर्बी को रोकता है। पेट की सभी बीमारियों में परम हितप्रद है।

● ● ●

बिना संयम के धारण किये हुए मनुष्य भव प्राप्त करना ही व्यर्थ है। कारण जब तक यह जीव संयम को नहीं पालेगा तब तक उसकी दुर्गति ही होगी। इसीलिए हर एक प्राणी का कर्तव्य है कि वह बिना संयम के एक घड़ी भी व्यर्थ नहीं जाने देवे, क्योंकि बिना संयम से यह आयु भी व्यर्थ है।

थियोसोफी में –

सिद्धयोग की भूमिका

– श्री डॉ. विजयसिंह, गोरखपुर

थियोसोफी अथवा ब्रह्मविद्या नामक संस्था की संस्थापिका एक विदेशी महिला मादाम् बौलोत्सकी थीं। जिनमें बचपन से ही अतीन्द्रीयत्व बोध था। आगे चलकर उन्हें अपने परादृष्टि में एक भारतीय महान योगी से साक्षात्कार होता है। उन्हीं परम कारुणिक ऋषिश्वर ने बीसवीं सदी तथा आगे के कालों में भौतिकवादिता से त्रस्त जीवों को आध्यात्मिक बोध देने के लिए मादम् बौलोत्सकी को सद्–प्रेरणा से प्रेरित किया। आगे चलकर यह संस्था विश्वव्यापी मानव–कल्याण की योजनाओं में आबद्ध हुई। कई अंग्रेज, अमेरिकन, ऑस्ट्रेलियन, जर्मन, ईसाई धर्मावलम्बी विद्वान इस अनुभूति युक्त साधना सम्पन्न संस्था से सम्बन्धित हुए तथा बड़ा ही प्रभावकारी ब्रह्म–ऐक्य भावना का प्रचार किया।

इस संस्था ने नाना धर्मों में व्याप्त रूढ़िवादिता का जहां खण्डन किया वहीं यथार्थ जीवन में प्रवेश हेतु योग–ध्यान की अनिवार्यता को जनमानस में बिठलाया। अनेक अध्यात्म अनुभूति से सम्पन्न शिक्षित साधकों को तैयार किया जिन्होंने भारतीय योग–दर्शन को विश्व मंच पर सिद्धान्त तथा व्यवहार के रूप में प्रस्तुत किया। अध्यात्म सम्बन्धी नाना अनुभूतियुक्त सरल ग्रन्थों का प्रतिपादन–लेखन कार्य भी किया। सबसे महत्व की बात तो यह है कि विश्व को इस संस्था ने स्पष्टतया बतला दिया कि युग प्रवर्तन हम साधारण मनुष्यों से संचालित नहीं होता, अपितु श्रेष्ठ सिद्धों का संघ हमारे मानवीय जीवन को निरन्तर विकास की ओर ले जा रहा है। अतः हमें जीवन में उपलब्ध भौतिक सुख–सुविधाओं के आधिक्य से भ्रमित नहीं होना चाहिए। अध्यात्म जगत में प्रवेश उन्हीं व्यक्तियों को मिलता है जिन्होंने अपने जीवन में कम से कम न्यूनतम मानवीय सद्‌गुणों को स्थापित करने की चेष्टा की है। सद्‌गुरु सत्ता की महत्ता को बड़े ही प्रभावी ढंग से स्वीकारा है। जीव का उत्थान मात्र गुरु कृपा पर आधारित है। शिष्य को कैसा होना चाहिए? आधुनिक युग के चिंतन धारा वाला व्यक्ति कैसे शिष्य बन सकता है, इन मूल प्रश्नों पर अत्यन्त ही सुग्राह्य तर्कों को प्रस्तुत कर, आज के मनुष्य को स्पष्ट अध्यात्म पथ का बोध कराता है।

डॉ. कृष्णमूर्ति। एनीबेसेण्ट, लीडी, सिनेट आदि कई ब्रह्म–अनुभव सम्पन्न लोगों ने सिद्धयोग की महत्ता पर व्यापक प्रकाश डाला है। साधकों के लिए सिद्धानुशासन अथवा साधक की आचार संहिता भी बहुत ही प्रभावी शब्दों उल्लिखित है। साधक को कैसा होना चाहिए? उसकी दैनन्दनी किस तरह की हो साथ ही साधारण लोगों के लिए अदृश्य रहकर भी लोक

कल्याण करने वाले जीवन–मुक्त सिद्धों की कार्यप्रणाली पर भी सजीव प्रकाश डाला।

कुछ नई सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति सहज ही मन को आकर्षित कर लेती है। जैसे भविष्य के शताब्दियों में सर्व धर्म समन्वय के साथ ही पूरे विश्व का भ्रातृत्व भाव से भरपूर होना, सारे धर्मों की अच्छी परम्पराओं को पात्रता अनुसार व्यक्तियों द्वारा पालन करना। मानव का सर्वांगीण विकास।

सबसे अद्भुत बात यह है कि इस संस्था के प्रभावी कार्य–कर्ताओं ने (बावजूद कि वे ऐसे धर्म से सम्बन्धित पहले रह चुके थे जो पूर्वजन्म मूर्ति–उपासना में बिल्कुल विश्वास नहीं रखता) अपने आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर पूर्वजन्म को स्वीकार किया है तथा संसार को बतलाया कि जिन कट्टर धर्मावलम्बियों ने पुनर्जन्म को नहीं स्वीकार किया वे व्यवहार सिद्ध वस्तुओं के त्याग के समान भूल किये हैं।

योग सिद्धान्तों तथा भगवद् गीता के साथ ही हिन्दू पौराणिक व्याख्यानों के आधार को लेते हुए ही 'ब्रह्म–विद्या' के सिद्धान्त को पुष्ट किया है। महात्मा कुथुमि, महात्मा मौर्य तथा भगवान मैत्रेय जो कि भगवान बुद्ध के ही आध्यात्मिक स्वरूप हैं (एक भगवान मैत्रेय, श्रीमद्भागवत् पुराण में आते हैं – जिन्होंने विदुर जी को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण के संकेत से किया था क्या वही हैं यह प्रश्न विवेचनीय है?) तथा अन्य सिद्ध, जीवन मुक्त महापुरुष लोक सेवा के उद्देश्य से आज भी ब्रह्मविद्–जिज्ञासु जनों को आध्यात्मिक सहायता प्रदान करते हैं। डॉ. एनी. बेसेण्ट ने एक पुस्तक में लिखा है कि महात्मा क्राइस्ट (ईशामसीह) बुद्धावतार थे।

इस संस्था की कुछ पठनीय पुस्तकें जिनमें सिद्धयोग के विषय का प्रतिपादन किया गया है निम्न हैं–

1. The Voice of the Silence (सार शब्द)
2. Light on the path. (मार्ग प्रकाशिनी)

●●●

जो महापुरुष आत्म भाव एवं आत्म चिंतन में लीन रहते हैं, वे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी देवी देवता की पूजा उपासना आदि नहीं करते हैं, क्योंकि वे सदैव सर्वत्र अपने निज स्वरूप आत्मा का ही अनुभव करते रहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का भेद अविद्या एवं माया से उत्पन्न हुआ है तथा कल्पित है। ब्रह्म आत्मा से भिन्न तत्व नहीं है।

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरु देव जी द्वारा)

प्रश्न – परम पूज्य श्री गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि –विदेह किसे कहते हैं और उसकी क्या सामर्थ्य होती है?

उत्तर – प्रिय सौम्य ! जिन योगियों को आनन्दानुगत समाधि की प्राप्ति हो जाती है और विशुद्ध सत्व के भावों को अनुभव करते हुए जो योगी उसमें अपने आपको लय कर डालते हैं, वे विदेह कहलाते हैं। विदेहों के स्वर देह–धर्म नहीं हुआ करते। उन्हें इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं रहती। उनके सभी काम संकल्प मात्र से हो जाया करते हैं। उन्हीं के सम्बन्ध में शास्त्रों का यह कथन है – **श्रण्वन् कर्णः भवति, पश्यन् नेत्रम् भवति, स्पृशन् त्वग् भवति, जिघ्रन् नासिका भवति।** अर्थात् वे संकल्पमात्र से ही हजारों मील दूर की बातें सुन सकते हैं, हजारों मील दूर के दृश्य देख सकते हैं, हजारों मील दूर का स्पर्श कर सकते हैं और हजारों मील दूर की गन्ध ग्रहण कर सकते हैं।

प्रश्न – हे गुरुदेव! क्या इस अवस्था को प्राप्त कर लेना ही कैवल्य मोक्ष कहा गया है और क्या विदेहों को पुनः संसार में जन्म लेना नहीं पड़ता? क्या विदेहावस्था प्राप्त योगियों को ही जीवन्मुक्त कहा गया है या कि उनकी कोई और श्रेणी है?

उत्तर – हे पुत्र सुनो! विदेह योगियों का चित्त साधिकार रहता है। अतः उन्हें भी जन्म लेना ही पड़ता है। किन्तु वे अपने आपको मुक्त समझते हैं और कैवल्य का सा आनन्द अनुभव करते हैं। गुणाधिकार से आगे निकल कर ही योगी निर्गुण चैतन्य को प्राप्त होता है और तभी उसके चित्त का अधिकार समाप्त होता है। जब गुणों का गुणों में अवसान हो जाता है तब हृदय ग्रन्थि खुल जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्मबन्धन समाप्त हो जाते हैं। ऐसा योगी कैवल्पद को पा जाता है। यहाँ पराकाष्ठा है और यही परा गति है।

गीता में इसे ब्राह्मी–स्थिति कहा गया है और उसकी प्राप्ति का उपाय निम्नलिखित श्लोक में बताया गया है –

निर्मानमोहा जितसंगदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययम् तत्।।

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य–स्थिति है और जिनकी कामनायें पूर्णरूप से नष्ट हो गई हैं वे सुख दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं –

न तद्भासयते सूर्यः न शशांको न पावकः।
यद्गत्वां न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य को लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता, उस स्वयं प्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा और न अग्नि ही। वही मेरा परम धाम है।

प्रश्न – पूज्य गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं इस विषय को भलीभांति समझ गया हूँ कि योगी की परम गति क्या और किस प्रकार होती है तथा कैवल्य मोक्ष किसे कहते हैं? कृपा करके यह भी बतला दीजिए कि जीवन मुक्त किसे कहते हैं?

उत्तर – हे पुत्र! विदेहावस्था तथा प्रकृति लयता की स्थिति को पारकर केवलीभाव को प्राप्त हुए योगियों को ही जीवन्मुक्त कहा गया है।

महोपनिषद् के दूसरे अध्याय में जीवन्मुक्त के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं –

तपः प्रभृतिना यस्मै हेतुनैव बिना पुनः।
भोगा इह न रोचन्ते स जीवन्मुक्त उच्यते।।
आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतः।
न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः।
तिष्ठति ध्येय संत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते।।
मौनवान निरहंभावो निर्मानो मुक्तमत्सरः।
यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
सर्वत्र विगतस्नेहो यः साक्षिवदवस्थितः।
निरीच्छो वर्तते कार्ये स जीवन्मुक्त उच्यते।।
येन धर्ममधर्मं च मनोमननमीहितम्।
सर्वमन्तः परित्यज्य स जीवन्मुक्त उच्यते।।
कट्वम्ल लवणतिक्त–ममृष्टं मृष्टमेव च।
शान्त संसारकलनः कलावानपि निष्कलः।।
य सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।।
यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि निस्पृहः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते।।

जीवन्मुक्त वही है जो तप आदि साधनों के बिना स्वभाव से ही सांसारिक भोगों से विरक्त है। समय–समय पर मिलने वाले सुख और दुःखों में जो आसक्त नहीं होता तथा जो सुख से हर्षित और दुःख से दुःखी नहीं होता, ऐसा पुरुष काम, क्रोध, हर्ष, उद्वेग, शोक आदि विकारों से मुक्त रहता है और अहंकारयुक्त वासना को स्वभाव से ही त्याग देता है तथा चित्त के

अवलम्बन में जो सदा त्याग–भाव रखता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

जिसका मौन रहने का स्वभाव हो, जो मान–मत्सर के विकार से रहित है, जो उद्वेग रहित होकर अपने कर्म में लगा रहता है, जो मोह रहित होकर साक्षी के समान जीवन व्यतीत करता है और बिना किसी फल की कामना किये कर्मरत रहता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। जिसने धर्म–अधर्म, सब प्रकार के संकल्प–विकल्प तथा सांसारिक विषयों के चिन्तन का त्याग कर दिया है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। जो पुरुष खट्टे, चरपरे, कड़वे, मीठे, नमकीन पदार्थों को स्वाद की चिन्ता किये बिना ही खा लेता है, अर्थात् जो पुरुष स्वादिष्ट और स्वादहीन पदार्थों को एक समान समझकर खा लेता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है, जो कलायुक्त होते हुए भी कलारहित रहता है, चित्त के रहते हुए भी जो चित्तरहित बना हुआ है तथा जिसने सांसारिक विषयों का चिन्तन छोड़ दिया है वह जीवन्मुक्त है। विश्व के सभी अर्थजालों के मध्य स्थिर रहते हुए भी पराये धन से निस्पृह रहने वाला तथा आत्मा में पूर्णता का अनुभव करने वाला महात्मा जीवन्मुक्त कहलाता है।

प्रश्न – हे गुरुदेव! क्या सामान्य सांसारिक व्यक्ति भी योग साधना द्वारा ऐसी उच्चतम स्थिति को पाकर शाश्वत सुख का अनुभव करता हुआ संसार–चक्र से मुक्त हो सकता है?

उत्तर – हाँ पुत्र ! योग से सब कुछ संभव है। हमारे आचार्यों का यह अनुभूत सिद्धांत है– **यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिद ज्ञातं भवति सेयं योगविद्या।** अर्थात् जिसे जान लेने से सब कुछ जाना जाता है, जिसे पाकर सब कुछ अपने आप मिल जाता है वही यह योग–विद्या है। भगवान पतंजलिदेव द्वारा दर्शाये गये अष्टांगयोग के सिद्धान्तों पर आचरण करता हुआ मनुष्य अपने जीवन को योगमय बना सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

प्रश्न – हे गुरुदेव! अष्टांगयोग किसे कहते हैं तथा उसे अपनाकर किस प्रकार मनुष्य योगी बन सकता है?

उत्तर – प्रिय वत्स! सुनो – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – ये योग के आठ अंग हैं। इनमें से यम और नियम योग–विद्या की वर्णाक्षरी है। जब तक इनका दृढ़ता से पालन न किया जाये तब तक साधक योगमार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता। अतः सर्व प्रथम यम–नियमों की ही साधना करनी चाहिए। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहलाते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

इनमें से यदि किसी एक का भी दृढ़ता से पालन किया जाये तो शेष यम नियमों का पालन स्वतः ही हो जाता है। उदाहरणार्थ– जो व्यक्ति मनसा–वाचा–कर्मणा अहिंसक है, जिसने जीवन में अहिंसा व्रत को धारण कर रखा है, उससे सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का तथा पांचों नियमों का पालन अपने आप ही हो जायेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति तपस्वी है या स्वाध्यायशील है उससे भी सभी यमों और शेष नियमों का पालन स्वाभाविक हो ही

जायेगा।

यम–नियमों के बाद तीसरा अंग 'आसन' है। आसन सिद्धि के लिए दो बातें बताई गई हैं– **प्रयत्न शैथिल्यादनन्तसमापत्तिभ्याम्।** अर्थात् शरीर सम्बन्धी सब प्रकार की चेष्टाओं को त्याग देना और परमात्मा में मन लगाना इन दो उपायों से आसन सिद्ध होता है। आसन की स्थिरता के लिए ब्रह्मचर्य रूप 'यम' का तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान आदि नियमों का पालन परमावश्यक है।

योग का चौथा अंग प्राणायाम है। प्राणायाम की गिनती तपों में की गई है। प्राणायाम के अभ्यासी के लिए यम–नियमों का पालन और भी अधिक आवश्यक है। साथ ही आसन की स्थिरता भी जरूरी है।

पाँचवां अंग 'प्रत्याहार' है। इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों को सब ओर से समेटकर मन में विलीन करने का अभ्यास 'प्रत्याहार' कहलाता है। प्रत्याहार का फल बताया गया है – **ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्।** अर्थात् प्रत्याहार सिद्ध हो जाने पर साधक की इन्द्रियां सर्वथा उसके वश में हो जाती हैं।

इसके बाद योग के तीन अन्तिम अंग – धारणा, ध्यान और समाधि हैं। इन्हें अन्तरंग अंग माना गया है। यमों से लेकर प्रत्याहार तक योग के पाँच बहिरंग अंग कहे जाते हैं। इन पर दृढ़ता से आचरण करता हुआ साधक ही धारणा, ध्यान और समाधि में प्रवेश पा सकता है।

इस प्रकार योग के सभी अंग एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक दूसरे के पोषक हैं। अष्टांगयोग का फल बताते हुए भगवान पतंजलि देव लिखते हैं – **योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।** अर्थात् योग के आठ अंगों को आचरण में लाने से चित्त के राग–द्वेषादि मल नष्ट हो जाते हैं और साधक के ज्ञान का प्रकाश उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ विवेक–ख्याति तक पहुँच जाता है, उसकी बुद्धि का खजाना खुल जाता है और वह निर्बीज समाधि को प्राप्त हो जाता है।

अष्टांगयोग के अन्तर्गत – तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को योगदर्शन में क्रियायोग के नाम से वर्णित किया गया है। इसके अभ्यास से मन्द से मन्द साधक भी योग की अमर निधि को पा जाया करता है। इसके साथ ही हमारे योगाचार्यों का यह आदेश भी ध्यान देने योग्य है –

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो–वदन्ति।।

अर्थात्– तत्वदर्शी महापुरुषों की शरण में जाकर एवं उनका कृपा–भाजन बनकर ही मनुष्य योग की अमर निधि को पा सकता है बिना उनकी सहायता के योगमार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है।

● ● ●

मेरे दाता मेरे गुरुवर

— विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर

तर्ज — सुन चम्पा सुन तारा

मेरे दाता मेरे गुरुवर, आये हम भी तेरे दर पर
दुनिया से गया हार, सुनो मन की पुकार — 2 ... मेरे दाता ...

जग का चलन है निराला,
यहाँ आके हुआ मतवाला
झूठे बन्धन जोड़ के मैंने
तोड़ा सच्चा नाता
मेरे दाता मेरे गुरुवर ...

दुनिया का बोझ उठाया,
गुरु शरण कभी मैं ना आया
माया के चक्कर में पड़के,
छोड़ गुरु का द्वारा
मेरे दाता मेरे गुरुवर...

जीवन के प्रभुजी रखवारे,
श्री चन्द्रमोहन जी सबसे न्यारे
बन्धन मेरे काट के सारे,
भव से पार लगाया
मेरे दाता मेरे गुरुवर...

करने को कृपा प्रभु जी आये,
दर आने से काहे कतराये
जाल मोह में फँस के मैंने
गुरु से हाथ छुड़ाया
मेरे दाता मेरे गुरुवर...

दया अपनी करो मेरे दाता
दर दूजा नजर नहीं आता
शरण 'विजय' को अपनी लेके,
जग जंजाल हटाया
मेरे दाता मेरे गुरुवर...

● ● ●

श्री शीतल शर्मा दम्पति पर कृपा

परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के विशेष चरणानुरागी एक दम्पति का नाम श्री शीतल शर्मा तथा श्रीमती अंजू शर्मा है। इनकी अवस्था इस समय क्रमशः पचास वर्ष एवं छियालिस वर्ष है। ये इस समय मूलरूप से राजस्थान प्रान्त के श्री गाँधी नगर शहर के निवासी हैं। अपने श्री सिद्धयोग दरबार के सम्पर्क में सन् उन्नीस सौ पंचानबे में आये। हमारे एक आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई के सम्पर्क में आने के बाद, उस गुरुभाई के मन में इनके परम कल्याण की भावना बलवती हुई एवं उसके द्वारा बतायी गयी साधना की विधि अपना कर इस समय ये दम्पति श्री प्रभु कृपा के योग्य पात्र बने हुए हैं।

इस समय श्री शीतल शर्मा जी किसी प्राइवेट कम्पनी के प्रान्त स्तर के अधिकारी हैं। योगेश्वर द्वय के राजस्थान प्रान्त के एक योग प्रचार कार्यक्रम तथा ध्यान शिविर में इस दम्पति से मिलने का सुअवसर मिला। इस दम्पति ने श्री योगेश्वर कृपा का जो स्वरूप हमसे वर्णन किया, उसको इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिपिबद्ध किया जा रहा है कि यह प्रसंग गुरुभाई–बहनों एवं नवागन्तुक साधक–साधिकाओं की आध्यात्मिक श्रद्धा में वृद्धि करेगा। पति–पत्नी दोनों ही मृदु भाषी एवं सादा जीवन उच्च विचार के अनुयायी हैं।

हमारे उस वरिष्ठ गुरुभाई ने, जिसके सम्पर्क में आने के बाद, ये सिद्धयोग से जुड़े, इन्हें श्री सद्गुरुदेव भगवान तथा दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का स्वरूप एवं आरती की किताब उपलब्ध करा दिया था एवं इस दम्पति को यह बतलाया था कि नित्य प्रातः सायं इन स्वरूपों की खूब आदर एवं श्रद्धा के साथ आरती किया करो। साथ ही यह भी आदेश दिया कि भगवान शंकर के मन्त्र का जप किया करो। इस दम्पति ने उपरोक्त निर्देशों का ईमानदारी एवं कड़ाई से पालन किया, उसका परिणाम तो शुभ निकलना ही था एवं उस साधना के परिणामस्वरूप यह जोड़ा योगेश्वर द्वय का कृपा पात्र बन गया। एक तथ्य की बात है और वह यह है कि आप हम मान रहे हैं कि हम श्री गुरुदेव भगवान के हैं, यह अलग बात है एवं इस रहस्य का बोध श्री सद्गुरुदेव भगवान करा दें कि हम उनके हैं तो यह बात अलग है, एवं यह इस बात की साक्षी है कि हमारी साधना–स्वाध्याय ठीक चल रहा है। इसी प्रकार मानने एवं जानने में बहुत अन्तर है। मानने वाली किसी घटना या प्रसंग में जब प्रमाण मिल जाता है तो वही मानना जानना बन जाता है। जानना सदैव सत्य हुआ करता है जबकि मानना कभी–कभी असत्य भी हो जाया करता है। श्री शर्मा दम्पति योगेश्वर द्वय के हैं, इसका बोध उनको हो गया है।

सन् दो हजार दो के, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव के अवसर पर श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पर चैत्र शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और नौमी के उत्सव में ये दम्पति सप्तमी को ही श्री सवांई धाम पहुंचना चाहते थे, परंतु सांसारिक कार्य की व्यस्तता के कारण ऐसा नहीं हो सका। ये दम्पति चैत्र शुक्ल अष्टमी के सायं से यात्रा आरम्भ किये एवं चैत्र शुक्ल नौमी को प्रात: चार बजे एत्मादपुर चौराहे पर पहुँच गये। इतने प्रात:काल श्री सवांई धाम के लिए साधन मिलना असम्भव सा ही है एवं पैदल चलने का अभ्यास न होने के कारण मुसीबत सामने आ गयी। करीब आधे घण्टे तक अपने पुरुषार्थ से श्री शर्मा जी ने साधन ढूढ़ा परन्तु नहीं मिला। तदन्तर उन्होंने अपनी सहधर्मिणी से कहा कि लगता है, ढाई तीन घण्टे यहीं इन्तजार करना पड़ेगा। उन्होंने सड़क के किनारे पड़े एक तख्त पर सामान रखा एवं अपनी पत्नी से कहा कि तुम यहीं बैठी रहो मैं लघुशंका करके अभी आ रहा हूं। उनके वहाँ से हटते ही एक सरदार वेषधारी छोटा बजाज टैम्पू लेकर आ गया एवं बोला, ''श्री सवांई धाम चलना हो तो टैम्पू में बैठो, मैं जा रहा हूँ।'' श्रीमती अंजू शर्मा ने कहा, ''मेरे पति लघुशंका करने गये हैं, उनको आ जाने दीजिए।' उस हट्टे–कट्टे टैम्पू वाले ने कहा, 'वो देखो! तुम्हारे पतिदेव आ रहे हैं।' इतना कहकर उसने टैम्पू में सामान रखा एवं कहा कि आप बैठ जाइये, आपके पतिदेव को, जो इस तरफ आ रहे हैं बैठा लूंगा। तब तक श्री शर्मा जी भी आ गये। थोड़ी देर में टैम्पू श्री सिद्धगुफा धाम सवांई पहुँच गया एवं आश्रम से पूर्व परिचित की तरह, अपना टैम्पू पुरुष स्नानागार के पास रोका। टैम्पू से उतरने के बाद श्री शर्मा जी ने कहा कि कितने पैसे दे दूं। उस सरदार वेषधारी टैम्पू वाले ने कहा, 'मेले में भीड़ का माहौल है, पहले अपना सामान उचित स्थान पर रख लो, फिर पैसे देना।' मात्र पांच सात मिनट में वे अपना सामान अपने परिचित के यहाँ रखकर आये एवं टैम्पू वाले को लगभग आधे घण्टे तक खोज किये, पर वह कहीं नहीं मिला।

अभी विगत वर्ष अर्थात् दो हजार नौ–दस की बात है। श्री शीतल शर्मा जी की नौकरी तो बड़ी व्यस्त है, फिर भी प्रात: कालीन आरती–पूजा एवं ध्यान में, ये पूरे समय उपस्थित रहते हैं। सायंकाल की आरती–पूजा में उनका उपस्थित रहना दुविधायुक्त ही है। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती अंजू शर्मा खूब विधि–विधान से सायंकालीन आरती–पूजा किया करती हैं। उन्होंने अपना एक नियम बना रखा है कि पूरी रात मन्त्र–जप करने का प्रयास करती हैं। रात्रि को सोते समय मन्त्र–जप करती है एवं कब नींद में चली गयी, इसका आभास इन्हें नहीं रहता। इसी नियम के अनुसार वे एक रात्रि सोते समय मन्त्र–जप करना आरम्भ की। रात्रि साढ़े दस बजे से मन्त्र–जप करती रहीं एवं प्रात: चार बजे तक इन्हें नींद नहीं आयी। वे बता रही थीं कि शरीर में आलस्य तो बिल्कुल नहीं था परंतु इस भय के कारण उदास थीं कि दिन में आलस्य व नींद न लगने लगे। इसी उधेड़बुन में इन्होंने मन ही मन प्रार्थना किया, 'हे योगीश्वरों! अब मैं मन्त्र–जप करते–करते थक गयी हूं। या तो मेरा ध्यान लगा दो या मुझे नींद में कर दो।'

उनकी इस प्रार्थना के तत्काल बाद श्रीमती अंजू शर्मा को महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा श्री सद्गुरुदेव जी महाराज खुली आँखों स्थूल भेष में दीखने लगे। इनका शरीर जड़वत हो गया था। अतः इन्होंने सोते-सोते श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया। आशीर्वाद देने के बाद महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने कहा, 'श्रीमती अंजू! शीतल शर्मा का समय पूरा हो गया है। हम इसे ही लेने आये हैं। तू कोई भी वरदान इस समय हमसे मांग ले, ताकि तुम्हारा सहारा बना रहे। वह एक-दो दिन में इस संसार से चला जायेगा।' अपने बाबा जी के यह वाक्य सुनकर अंजू शर्मा अवाक् रह गयी। कुछ देर बाद उसने प्रार्थना किया, 'बाबा जी! यदि इन्हें ले जा रहे हो तो मेरी इस दुनिया में क्या आवश्यकता है, मुझे भी लेते चलिये।'' दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अपने मुखारविन्दु से कहा, 'इस नश्वर संसार में सब प्राणी एक निश्चित समय के लिए आते हैं, एवं समय पूरा होने पर उन्हें यह संसार छोड़ना ही पड़ता है। अब इसका समय पूर्ण हो गया है, इसे जाने दो।'

अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर, दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के मुखारबिन्दु से यह वाक्य सुनकर, श्रीमती अंजू शर्मा ने प्रार्थना किया, 'प्रभो! क्या इस संसार में रहने की अवधि निर्धारित करने वाली सत्ता की ये हिम्मत है कि वह आपके आदेश का उल्लंघन करें। क्या जन्म देने वाले, पालन करने वाले एवं फिर संहार करने की ताकत वाले किसी देव में यह कूवत है कि आपके आदेश का पालन न करें? कदापि नहीं, किसी भी काल या लोक में नहीं। आपकी कृपा से इसकी जानकारी हमें है। अतः मेरी आपसे प्रार्थना है कि इन्हें रहने देने की कृपा की जाय। इसके बाद यदि वरदान देने की इच्छा है तो यही वरदान देने की कृपा की जाय की आप योगेश्वर द्वय का स्थूल रूप दर्शन, मेरी इच्छा पर सुलभ रहे।'

दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज श्रीमती अंजू शर्मा की प्रार्थना सुन रहे थे एवं त्रिलोकीनाथ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। तदन्तर श्री दादा गुरुदेव जी ने, हमारे श्री गुरुदेव जी की तरफ देखकर कहा, 'बेटा! तेरी भी यही इच्छा है।' श्री सद्गुरुदेव जी भगवान ने श्री महाप्रभु जी को हाथ जोड़कर कहा, 'जी श्री प्रभु जी।'

श्रीमती अंजू शर्मा खुली आँखों यह सब दृश्य देखकर निहाल हो रही थी एवं सामान्य चेतना में नहीं थी, क्योंकि महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने जब यह कहा कि अब हम लोग जा रहे हैं तो उन्होंने प्रणाम निवेदिता नहीं किया। उसके तत्काल बाद हमारे श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपनी गम्भीर वाणी में कहा, 'अरे लल्ली! श्री प्रभुजी , जा रहे हैं, प्रणाम कर लो।' उनका शरीर जड़वत हो गया था, उसने उसी स्थान से दोनों योगेश्वरों को प्रणाम अर्पित किया। इस प्रसंग के दूसरे दिन बड़ी तीव्र गति का हार्ट अटेक श्री शीतल शर्मा जी को हुआ, परंतु चन्द दिनों में पूर्ण रूपेण बिल्कुल स्वस्थ हो गये। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है—

''वह शमा क्या बुझे, जिसे रोशन खुदा करे।''

यह कृपा प्रसंग श्री प्रभु जी के कृपा – पात्र इस दम्पति ने उन्नीस नवम्बर दो हजार दस को सुनाया था, उन्हें साधुवाद देते हुए, निम्न पंक्तियों के साथ यह कृपा प्रसंग यहीं समाप्त होता है –

योगी कहूँ या सिद्ध कहूँ,
या सृष्टि का सिरजनहार तुम्हें।
त्रेता वाला राम कहूँ,
या द्वापर कृष्ण मुरार तुम्हें।।
सोमनाथ कहूँ, वैद्यनाथ,
या काशी विश्वनाथ तुम्हें।
हे गुरुदेव, हे दादा गुरु,
मेरा बारम्बार प्रणाम तुम्हें।।

● ● ●

तुम्हारा यह मानव-जीवन पाप कमाने के लिए तो है ही नहीं, व्यर्थ खोने के क लिए भी नहीं है। इसका एक-एक क्षण भगवन की प्राप्ति का शुभ क्षण है, अतएव अमूल्य है और प्रत्येक क्षण को इसलिए भवत्प्राप्ति के साधन में ही लगाना चाहिए। संसार के इन्द्रियभोग तो सभी योनियों में मिल सकते हैं, परंतु भवत्प्राप्ति के साधन तो इसी मानव-शरीर से सम्भव है। अतएव इसको केवल इसी काम में लगाओ।

काल का प्रभाव और मानव जीवन की अनित्यता

(योग वासिष्ठ से साभार)

जगत में काल आदि के चरित्र ऐसे हैं तब आप ही बताइये इस संसार नामधारी प्रपंच्य में मेरे जैसे लोगों की क्या आस्था हो सकती है। हम लोग किसी के हाथ बिके हुए दासों तथा वन के मृगों की भाँति पराधीन हो रहे हैं। जैसे सर्प वायु को पीता है उसी प्रकार यह क्रूर आचरण करने वाला काल तरुण शरीर को बुढ़ापे में पहुँचाकर समस्त प्राणिसमुदाय को निरन्तर अपना ग्रास बनाता रहता है। काल निर्दयों का राजा है। वह किसी भी प्राणी के ऊपर दया नहीं करता। सम्पूर्ण भूतों पर दया करने वाला उदार पुरुष तो इस संसार में दुर्लभ हो गया है। इस जगत में जितनी भी प्राणियों की जातियाँ हैं, उन सब का वैभव तो अल्प है। तथा जितने भी भोग के स्थान हैं, वे सभी भयंकर और परिणाम में दुःख की ही प्राप्ति कराने वाले हैं।

प्राणियों की आयु अत्यन्त अस्थिर है, मृत्यु बहुत ही निर्दय है। जवानी भी अधिक चंचल होती है और बाल्यावस्था मोह में ही बीत जाती है। संसारी मनुष्य गाने बजाने की कला के रस से कलंकित हैं। बन्धु–बान्धव संसार में बाँधने के लिए रस्सी के समान हैं। भोग इस जगत के महान रोग हैं तथा सुख आदि की तृष्णाएँ मृग तृष्णा के समान हैं। बिना जीती हुई इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं। सत्यस्वरूप आत्मा असत्य–सा हो गया अर्थात् जीवात्मा अज्ञान के कारण देह को ही अपना स्वरूप मानने लग गया है बिना जीता हुआ मन बन्धन का हेतु होने से आत्मा का शत्रु है एवं अज्ञानवश यह जीवात्मा स्वयं ही अपने आप पर उस मन के द्वारा प्रहार करता है। अहंकार ही कलंक का कारण है। बुद्धियाँ अत्यन्त कोमल हैं। क्रियाएँ शास्त्र विरुद्ध होने से दुःख रूप फल देने वाली हैं शरीर और मन की चेष्टाएँ स्त्री की प्राप्ति में ही केन्द्रित है, केवल स्त्रियाँ ही उनका विषय हो गयी हैं। इच्छाएँ विषयों में ही शोभा पाती हैं– वे भोगों की ओर ही दौड़ती हैं तथा सम्पूर्ण विषय–रस वास्तव में नीरस है।

दूषित बुद्धि ने सबके अन्तःकरण को व्याकुल कर रखा है। अज्ञान के कारण सभी संवत हो रहे हैं। राग रूपी रोग दिनों दिन बढ़ रहा है और वैराग्य दुर्लभ हो रहा है। आत्म दर्शन की शक्ति रजोगुण से नष्ट हो गयी है। अतः सत्वगुण प्राप्त नहीं हो रहा केवल तमोगुण बढ़ रहा है। इसलिए सच्चिदानन्दघन परमात्मा अत्यन्त दूर है।

जीवन अस्थिर हो गया है। मृत्यु जल्दी ही आने के लिए उत्सुक है। धैर्य शिथिल हो गया है, बुद्धि मूढ़ता से मलिन हो गयी है। शरीर का अंतिम परिणाम एकमात्र विनाश ही देह में वृद्धावस्था प्रज्वलित हो उठी है और पाप की ही बारम्बार प्रगति हो रही है। जवानी यत्नपूर्वक भागी जा रही है। सत्संग दुर्लभ होता जा रहा है। कभी कोई उत्तम आश्रय नहीं मिलता दूसरों को सुखी देखने वाला आत्म संतोष मानो दूर चला गया है।

दुष्टों का संग पग–पग पर सुलभ है, परंतु सत्पुरुषों का संग अत्यन्त दुर्लभ हो गया है। सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। वासना संसार में बाँधने वाली है।

देश भी विदेश सा हो जाता है और पर्वत भी बिखर कर ढह जाते हैं, फिर मेरे जैसे मनुष्य की स्थिरता में क्या विश्वास है? वह काल आकाश को भी खा जाता है चौदहों भुवनों को भी अपना भोजन बना लेता है। पृथ्वी भी विनाश को प्राप्त हो जाती है। फिर मेरे जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास किया जा सकता है। काल अपने अगणित मुखों से इन्द्र को भी चबा जाता है। यमराज को भी वश में कर लेता है, चन्द्रमा भी कालवश आकाश में विलीन हो जाता है। सूर्य के भी खण्ड–खण्ड हो जाते हैं फिर हम जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या आस्था की जा सकती है। जो काल को भी कवलित कर देता है नियति को भी टाल देता है और अनन्त आकाश को अपने में विलीन कर लेता है, उस काल के होते हुए मुझ जैसे मनुष्य की स्थिरता पर क्या विश्वास किया जा सकता है। जिसका कानों में श्रवण, वाणी से वर्णन, नेत्रों से दर्शन नहीं होता, ऐसे अज्ञात स्वरूप एवं माया के उत्पादक किसी सूक्ष्म तत्व के द्वारा चौदहों भुवन अपने–आप में ही माया द्वारा दिखाये जा रहे हैं। वह तत्व निर्गुण – निराकार सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ही है। समष्टि अहंकार रूप कला को प्राप्त होकर सभी के अन्दर निवास करने वाला वह कालका भी कालरूप परमात्मतत्व सबसे महान है। तीनों लोकों में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो उसके द्वारा नष्ट न किया जा सके। स्वर्ग में देवता, भूतल पर मनुष्य और पाताल में सर्पों की सृष्टि उसी ने की है। वही अपने संकल्पमात्र में इन सबको जर्जर दशा में पहुँचा देता है।

जैसे समुद्र में उत्पन्न हो बड़वाग्नि के मुँह में गिरकर नष्ट होने वाली असंख्य लहरों को गिन नहीं सकता है। उसी तरह संसार में उत्पन्न हो काल के मुँह में पड़ने वाले अनन्त प्राणियों की गणना कौन कर सकता है। जैसे झाड़ियों में बैठे हुए मृग या पक्षी अपनी जिव्हा की लोलुपता के कारण मोहवश जाल में पड़ कर नष्ट हो जाते हैं। उसी तरह दुराशा–पाश में बंधे हुए सभी मनुष्य दोष रूपी झाड़ियों के मृग बने हुए हैं। सबके सब मोह जाल में फंस कर पुनर्जन्म रूपी जंगल में नष्ट हो जाते हैं। इस संसार में लोगों की आयु विभिन्न जन्मों में किये गये कुकर्मों से नष्ट हो रही है। यदि आकाश में वृक्ष हो उस वृक्ष में लगता हो और उस लता से गले में फांसी लगाकर मनुष्य को लटका दिया जाय तो उससे जो दुःख होगा वैसा ही दुःखमय फल उन कुकर्मों का भी बताया गया है। उस दुःख की निवृत्ति के लिए उपाय करना तो दूर की बात है। उस उपाय का विचार करने वाले लोग भी यहाँ हैं या नहीं, हमें इसका पता नहीं संसार में लोगों की बुद्धि चंचल और मृदु है, उसी बुद्धि से युक्त मनुष्य व्यर्थ ही अनेक संकल्प विकल्पों का जाल रचते हुए कहते हैं – आज उत्सव है। यह वही सुहावनी ऋतु है, इसने यात्रा करनी चाहिए, ये लोग हमारे सगे संबंधी भाई बंधु हैं, इन्हीं संकल्पों में पड़े–पड़े वे सब लोग एक दिन काल के गाल में चले जाते हैं।

●●●

मृत्यु के विषय में

लेखक – रामरतन तिवारी (एडवोकेट), दतिया

मृत्यु द्वार है मुक्ति का छूटे जग के फन्द।
पंजर तज पंछी चला, उड़ने को स्वच्छन्द।। (1)

ध्यान करो उस घड़ी का, जब छूटेगी देह।
निपट अकेला जायेगा, छोड़ देह अरु गेह।। (2)

व्याधिग्रस्त जब देह हो, निकल रहे हो प्राण।
प्रभु की शरणागति सिवा, कोई न देगा त्राण।। (3)

चिन्ता करना व्यर्थ है, जब मृत्यु अनिवार्य।
प्रभु के प्रति अर्पित करो, जीवन के सब कार्य।। (4)

देह शिथिल अति विकल हो, तड़पेंगे जब प्राण।
अन्त समय प्रभु स्मरण, देगा तुझको त्राण।। (5)

इच्छाओं से मुक्ति का, करो सतत् अभ्यास।
अन्त समय में शान्ति ही, जीव मात्र की आस।। (6)

मृत्यु पूर्व जैसा करे अन्तःकरण विचार।
वही बने प्रारब्ध का, पुनर्जन्म आधार।। (7)

मृत्यु से कर मैत्रि, हो दयनिक अभ्यास।
अन्त समय भय मुक्त मन, हो प्रभु का आभास।। (8)

देह मरेगी एक दिन, जब छूटेंगे प्राण।
पर अविनाशी जीव का, होगा मात्र प्रयाण।। (9)

देह जली, छूटा जगत, टूटे सब सम्बन्ध।
मिटा नहीं जो अमर है, आत्म भाव निर्बन्ध।। (10)

मृत्यु द्वार चिर शान्ति का, मिटे सभी छलछन्द।
मैं मेरे छोटे सभी, मिले सच्चिदानन्द।। (11)

अज्ञात लोक को चला, तज कर यह संसार।
मेरा सब छूटा यहीं, है संसार असार।। (12)

थकित देह को ज्यों मिलै, निद्रा में आराम।
चिर निद्रा की गोद में, मिलै चरम विश्राम।। (13)

जर्जर रोगी देह जब, हो जीवन का भार।
मिलै मृत्यु की गोद में, सब विश्राम अपार।। (14)

दुखद कल्पना मृत्यु की, चिन्ता का आधार।
मृत्यु मुक्ति दे दुख से, मन में कर स्वीकार।। (15)

जीवन सब को प्रिय लगै, मृत्यु से भयभीत।
जीवन की चिर संगिनी, करो मृत्यु से प्रीत।। (16)

मृत्यु से भयभीत न हो, मृत्यु शान्ति की गोद।
भय, चिन्ता छूटे सभी, टूटे सब संयोग।। (17)

करो कल्पना मृत्यु की, निकल रहे हों प्राण।
देखो आत्मा त्यागती, जीर्ण देह परिधान।। (18)

कर विचार, निज मृत्यु का मनो दशा अनुमान।
जो घटना अनिवार्य है, क्यों भूले मतिमान।। (19)

अन्त समय में हे प्रभु, रखना मन सन्तुष्ट।
राग द्वेष, चिन्ता न हो, रहे न मानस कष्ट।। (20)

यही प्रार्थना है प्रभु, जब हो महा प्रयाण।
मैं मेरे भूले रहे चिदानन्द का ध्यान।। (21)

राग द्वेष से मुक्त मन, बचे न कोई भ्रान्ति।
अन्त समय प्रभु हो, रहे चित् में शान्ति।। (22)

जन्म मृत्यु को जोड़ती इस जीवन की डोर।
आत्मा तो दृष्टा रहे, जिसका ओर न छोर।। (23)

सम्भाव्य मृत्यु के क्षणों में मूल सत्य का बोध।
नश्वरता संसार की चिन्मय सत् की शोध।। (24)

विस्मृति और मरण है, प्रकृति के वरदान।
पहले तो अप्रिय लगे, मिले अन्त में त्राण।। (25)

शव यात्रा सत्संग है, उपजे मन में ज्ञान।
लोभ, मोह निस्सार है, अन्तिम सच शमसान।। (26)

जीवन होता मृत्यु बिनु, असहनीय अभिशाप।
जीव तभी करता सदा, मृत्यु प्राप्ति का जाप।। (27)

● ● ●

केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके, श्रद्धा और भाव के सहित परमप्रेम से भगवान का निरन्तर चिन्तन करना 'अव्यभिचारिणी' भक्ति है।

रामायण में यज्ञ की महत्ता

– आचार्य श्रीराम शर्मा

सृष्टि के प्रादुर्भाव काल में जब पहले–पहल मनुष्य इस धरती पर अवतीर्ण हुआ तो यहाँ उसे बड़े अभाव, अशक्ति और कष्ट दिखाई दिये। मनुष्य अपने पितामह ब्रह्माजी के पास गये और अपनी सारी व्यथा कह सुनाई। ब्रह्माजी कुछ देर तक विचार करते रहे, इसके बाद उन्होंने मनुष्य से कहा – 'जाओ यज्ञ करो, आहुतियों से सन्तुष्ट हुए देवता तुम्हारी कामनायें पूर्ण करेंगे, शक्ति प्रदान करेंगे जिससे तुम्हारा जीवन सब प्रकार से सुखी होगा।'

इसके बाद ब्रह्माजी ने 'यजुर्वेद' का निर्माण किया। जिस प्रकार ऋग्वेद के मन्त्रों में विश्व–दर्शन सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान तथा तात्विक मीमांसायें भरी हुई हैं उसी प्रकार यजुर्वेद में यज्ञों से कामनाओं की पूर्ति होने का विशद विज्ञान भरा पड़ा है। इस यज्ञ विद्या का पण्डित होने के कारण ही भारतवर्ष किसी समय धन–धान्य से परिपूर्ण, सर्वसुखी एवं सर्व समुन्नत रहा है। यज्ञ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए शास्त्रकार ने उसे भारतीय संस्कृति का पिता कहा है और उसके द्वारा मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होने की बात को प्रमाणित किया है।

यही कारण था कि किसी जमाने में घर–घर अग्निहोत्र हुआ करता था। यज्ञ किये बिना लोग आहार नहीं ग्रहण करते थे, यज्ञ के बिना कोई मंगल कार्य नहीं पूरा होता था। दुष्ट प्रवृत्ति के लोग भी यज्ञ के तान्त्रिक विधानों से अपने मनोरथ सफल किया करते थे। इससे पता चलता है कि उस जमाने में यज्ञ–विद्या की कितनी गहन शोध हुई थी।

हमारा ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं जिसमें यज्ञ के महत्व पर प्रकाश न डाला गया हो। वेदों के अतिरिक्त भी उपनिषद्, दर्शन, पुराण, स्मृति, ब्राह्मण–ग्रन्थ, गीता आदि सभी ग्रन्थों में यज्ञ को संसार की सुख–शान्ति का प्रमुख उपाय बताया गया है। अनेक स्थलों पर बड़े–बड़े यज्ञों के विधान और वर्णन मिलते हैं। भारतीय–संस्कृति में एक नये अध्याय के प्रणेता महाकवि तुलसीदास जी की दृष्टि से भी यह महत्व छुप नहीं सका। रामायण में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनसे यज्ञ की महान् महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

भगवान राम स्वयं यज्ञ किया करते थे। राज–सिंहासन पर बैठने के बाद तो उन्होंने अनेकों बड़े–बड़े यज्ञ कराये। उत्तर–काण्ड में राम–राज्य के धर्म, सुख–सम्पदा के प्रसार पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास जी ने लिखा है –

कोटिन्ह बाजि मेध प्रभु कीन्हें।
दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।।

भगवान राम ने हजारों अश्व–मेध यज्ञ किये और अनेक ब्राह्मणों को दान दिया।

भगवान राम का जन्म भी यज्ञ के फलस्वरूप ही हुआ था। बालकाण्ड का बड़ा रुचिकर

प्रसंग है। एक बार दशरथ जी को बड़ा दुःख हुआ कि उनके तीन रानियाँ होते हुए भी कोई सन्तान नहीं हुई। इस दुःख से दुःखी होकर सम्राट दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास गये और उनसे अपनी अन्तर्व्यथा कही। महर्षि वशिष्ठ को मालूम था कि यदि श्रृंगीऋषि द्वारा सकाम यज्ञ कराया जाय तो दशरथ को सन्तान हो सकती है। इस निश्चय के अनुसार –

श्रृंगी ऋषिहि वशिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जज्ञ करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अग्नि चरू कर लीन्हें।।

वशिष्ठ का आमन्त्रण पाकर श्रृंगी ऋषि अयोध्या आये और उन्होंने पुत्र की कामना से यज्ञ कराया। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो अग्नि देव प्रकट हुए और उन्होंने वशिष्ठ जी से कहा –

जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा।
सकल काजु भो सिद्ध तुम्हारा।।
यह हवि बांटि देहु नृप जाई।
जथा जोग जेहि भाग बनाई।।

हे वशिष्ठ! आपने जिस इच्छा से हमें आहुतियाँ दीं उनसे मैं प्रसन्न हुआ। तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। लो! इस ही विपात्र को यथा–योग्य अपनी रानियों को बाँट दो।'

वशिष्ठ जी ने वह खीर दशरथ जी को समर्पित करदी। इसके बाद उसे बांटने और रानियों के गर्भवती होने का वर्णन इस प्रकार किया है –

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाई।
कौसल्यादि तहाँ चलि आई।।

\+ + +

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी।
भई हृदय हरषित सुख भारी।।

राजा ने सभी रानियों को बुलाकर वह खीर वितरित की जिसे सबने प्रसन्नतापूर्वक खा लिया। इस प्रकार सभी रानियां गर्भवती हुईं और उन्हें अपार सुख मिला।

यज्ञों से देव–शक्तियों का आवाहन होता है। वह देव–शक्तियां बड़े वैज्ञानिक ढंग से लोगों की कामनायें पूर्ण करती हैं – इस बात का बालकाण्ड में अन्यत्र भी संकेत किया गया है –

करिहहिं विप्र होम–मख सेवा।
तेहि प्रसङ्ग सहजेहि बस देवा।।

हे राजन्! जब ब्राह्मण लोग यज्ञ–मख आदि से देवताओं की सेवा करेंगे तो वे सहज ही

में तुम्हारे वश में हो जायेंगे अर्थात् देवतागण तुम्हारी अभीष्ट कामनायें भी पूरी करेंगे।

देवताओं को प्रसन्न करने और देश में सुख–शांति तथा सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए ऋषिगण आश्रमों में यज्ञ किया करते थे पर आसुरी शक्तियां तो तब भी थी। देवों, असुरों का संग्राम सदैव से होता आया है। असुर लोग नहीं चाहते थे कि समाज में सत्प्रवृत्तियां बढ़ें और सदाचारी व्यक्तियों का बाहुल्य हो इसलिए वे उस जमाने में विघ्न उपस्थित किया करते थे। यज्ञ के महत्व से असुर भी अपरिचित न थे वे जानते थे कि यज्ञों से देव–शक्तियों का विकास होता है इसलिए जहाँ एक ओर ऋषिमुनि यज्ञों का आयोजन किया करते थे वहाँ आसुरी प्रवृत्ति के लोग उनमें विघ्न डालने के कार्यक्रम बनाया करते थे। रामायण में इसका स्पष्ट दिग्दर्शन कराया है। यथा –

विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी।
बसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी।।
जहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं।
अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं।।
देखत जज्ञ निशाचर धावहिं।
करहिं उपद्रव मुनि दुःख पावहिं।।

विश्वामित्र अपने आश्रम में ऋषि, मुनियों समेत जप–तप और यज्ञ किया करते थे पर उन्हें मारीच तथा सुबाहु आदि शक्तिशाली राक्षसों का डर बना रहता था। वे जहाँ भी लोगों को यज्ञ करते देखते वहाँ पहुँचकर उपद्रव खड़ा कर देते जिससे मुनियों को बड़ा दुःख होता था।

इन असुरों की कोई अलग जाति नहीं थी। आजकल जिस प्रकार अपने ही समाज में से कुछ लोग इस प्रकार के सत्कर्मों का विरोध करने लग जाते हैं और उनमें सहयोग देना तो दूर उल्टे अनेक प्रकार के विघ्न बाधाएँ खड़ी कर देते हैं, मारीच और सुबाहु भी ऐसे ही थे। यह मारीच और सुबाहु आज भी जगह–जगह फैले हैं। ये अच्छे कार्य और दूसरों के सुख कभी नहीं देख सकते। अपनी महत्वाकांक्षा के लिए दूसरों के कार्यों में विघ्न पैदा करना ही उनका जीवन उद्देश्य होता है। इसी में वे अपनी शान समझते हैं।

शक्ति का उच्छेदन शक्ति से होता है, बुराई के विरोध में वैसी ही शक्तिशाली भलाई को खड़ा कर दिया जाय तो बुराई परास्त हो जाती है। इस तथ्य को महर्षि विश्वामित्र ने अनुभव किया और इसी निश्चय के अनुसार वे महाराज दशरथ के पास गये और उनसे कहा –

असुर समूह सतावहिं मोहीं।
मैं जाचन आयउँ नृप तोहीं।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा।।

परन्तु दशरथ जी इसके लिए राजी न हुए। उन्हें पुत्रों का मोह सताने लगा। उस समय महर्षि वशिष्ठ भी वहाँ उपस्थित थे उन्होंने विचार किया कि यदि शुभ कर्मों में ही सहायता न दी जाय तो शक्ति और वैभव का महत्व ही क्या रहा? भलाई की शक्ति तो इसी से अजेय रह सकती है कि उसे सत्कर्मों में प्रोत्साहन भी मिले। इस विचार के साथ उन्होंने दशरथ को समझाया और यज्ञ की रक्षार्थ पुत्रों को सौंपने के लिए राजी कर लिया। राम और लक्ष्मण इससे बड़े हर्षित हुए, शुभ कर्म में सहयोग करने पर किसे हर्ष नहीं होता? वे तुरन्त विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए चल पड़े।

भगवान राम का जीवन ही यज्ञमय था फिर वे यज्ञ की रक्षा क्यों नहीं करते? विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच कर उन्होंने जिस प्रकार कठिन परिस्थितियों में यज्ञ की रक्षा की, रामायण में उसकी सुन्दर झांकी देखने को मिलती है –

प्रात कहा मुनि सन रघुराई।
निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई।।
होम करन लागे मुनि मारी।
आपु रहे मख की रखवारी।।
सुनि मारीच निशाचर कोही।
लै सहाय धावा मुनि दोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा।
सत योजन गा सागर पारा।।
पावक सर सुबाहु पुनि मारा।
अनुज निसाचर कटकु संघारा।।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण ने असुरों को मार कर यज्ञ की रक्षा की।

भगवान राम ने जिन यज्ञों की रक्षा की थी, वे संसार की भलाई के लिए किये जाने वाले यज्ञ थे। निर्जन एकांत में रहने वाले वैरागी मुनियों को न तो किसी प्रकार के धन की इच्छा थी, न उन्हें कोई अन्य महत्वाकांक्षा थी। लोक–कल्याण के कारण से वे आहुतियाँ दिया करते थे। समस्त पृथ्वी मण्डल पर विचरण करता हुआ यज्ञ धूम लोगों के स्वास्थ्य और आरोग्य की रक्षा करता था। प्रकृति शुद्ध रहती थी, सात्विक वातावरण में लोगों के मन और चित्त–वृत्तियाँ भी सात्विक हुआ करती थीं। भगवान राम ने लोक–कल्याण की कामना से ही राक्षसी वृत्तियों का संहार किया और यज्ञों की रक्षा की।

तान्त्रिक यज्ञों में शत्रु–संहार की भी शक्ति है। रावण अपनी विजय के लिए एक ऐसा ही वाममार्गी यज्ञ कर रहा था। इससे राम दल में चिन्ता उत्पन्न हुई और उस प्रयोग को असफल करने का प्रबन्ध किया गया।

लङ्काकाण्ड में इसका वर्णन इस प्रकार है–

नाथ करई रावन एक जागा।
सिद्ध भए नहिं मरिहि अभागा।।
पठवहु नाथ बेगि भट बन्दर।
करहिं विध्वंस आव दसकन्धर।।
जाय कपिन्ह सो देखा वैसा।
आहुति देत रुधिर अरु भैसा।।
जग्य विध्वंस कुशल कपि,
आये रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ,
त्यागि जिवन की आस।।

इस प्रकार के यज्ञ वाम–मार्गी कहलाते है, जो असुरों द्वारा ही सम्पन्न होते थे, इसी से कभी–कभी दूसरे धर्म के लोग हमारे यज्ञों पर आक्षेप भी करते है, किन्तु शास्त्रों में ऐसे यज्ञों का स्पष्ट निषेध है और ऐसा करने वालों को दण्ड देने की आज्ञा दी गई है। भगवान राम ने भी रावण का ऐसा ही वाम–मार्गी यज्ञ नष्ट किया था।

शत्रु विजय के लिए सात्विक प्रकृति के शक्ति–यज्ञ करने का विधान है, उसमें वनौषधियाँ ही प्रयुक्त होती है, पर उनका अपना एक स्वतन्त्र विधान है। चूंकि यह विद्या कठिन और दोषी हो जाने पर हानि कारक भी हो जाती है, इसलिए उसे गोपनीय रखा गया है। यह ऐसा ही है कि यदि बन्दूक चलाने वाले को उसकी प्रतिक्रिया का ज्ञान न हो तो वह दुश्मन को मारने की जगह अपना ही अहित कर सकता है।

रामायण में यह प्रसंग जहाँ यज्ञों की महत्ता पर प्रकाश डालते है, वहाँ वे हमें इस बात के लिए भी प्रेरित करते है कि यज्ञ भारतीय संस्कृति का मूलाधार है, उसे हमारे सब महापुरुषों ने स्वीकार किया है तो हमें भी यज्ञ करना चाहिए, जहाँ या हो रहे हो, वहाँ सहयोग देना चाहिए। यज्ञ से मनुष्य की भावनायें शुद्ध और आवश्यकतायें पूर्ण होती है। यज्ञों से संसार में सुख–शान्ति का वातावरण पैदा होता है।

● ● ●

इस संसार का जैसा स्वरूप शास्त्रों में वर्णन किया गया है और जैसा देखा–सुना जाता है, वैसा तत्वज्ञान होने के पश्चात् नहीं पाया जाता, जिस प्रकार आँख खुलने के पश्चात् स्वप्न का संसार नहीं पाया जाता।

लक्ष्य

– श्री रामलाल शर्मा, दिल्ली

यह 'मनुष्य जन्म' बड़ा विचित्र है कोई कहता है दुःखों का घर है कोई कहता है सुख का सागर है और कोई कहता है यह दोनों का मेल है। सुख भी आते है और दुःख भी। वास्तव में देखने में यह आया है कि मनुष्य जीवन में कुछ क्षण ऐसे अवश्य आते हैं जब वह यह सोचने पर बाध्य हो जाता है कि मैं कौन हूँ कहाँ से आया हूँ। कहाँ जाना है, आखिर मैं किसलिए यह सब कुछ कर रहा हूं। वह इस दुनिया को अपना वास्तविक स्थान नहीं समझता क्योंकि उसे पता है कि यह शरीर जो उसके सबसे निकट तथा प्रियतम वस्तु है नश्वर है मिट्टी में मिल जाता है समाप्त हो जाता है। तब और सगे–सम्बन्धियों तथा धन माया का तो कहना ही क्या।

शरीर का जो संचालन कर रहा है वह "मैं" नाम का जीव अवश्य ही शरीर में रहते हुए शरीर से अलग है तथा यह जीव जिसके इशारे पर कार्य कर रहा है वह जिसे लोग आत्म कहते हैं क्या है?

कण–कण में रमा है पर नजर आता नहीं।
योग साधन के बिना उसको कोई पाता नहीं।।

यह जो सब आत्माओं का संचालन करता है जिसे परमात्मा कहा है वह कण–कण में समाया है जैसे दूध में घी है पर नजर नहीं आता जब तक कि योग रूपी मथनी से मथा नहीं जाये। एक महात्मा हमेशा कहा करते थे कि मन की तरंग मार लो।

'योगः चित्त वृत्ति निरोधः।'

भगवान पतंजलि ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि जो मन में तरंगें उठती है उनका निरोध ही योग है जैसे जल स्थिर होने पर चन्द्रमा की परछाई स्पष्ट हो जाती है उसी प्रकार जीव आत्मा को स्पष्ट रूप से तभी देख सकता है जबकि उसके मन की तरंगें शान्त हो गई हों।

ये मन की तरंगें कैसे रुकें। अर्जुन ने भी योगेश्वर कृष्ण से प्रश्न किया था कि हे पार्थ मैं आंधी को रोक सकता हूं परंतु मन इतना वेगवान है कि इसे नहीं रोका जा सकता तो योगेश्वर कृष्ण ने उत्तर दिया था कि अभ्यास से सब कुछ सम्भव है। और गीता के दूसरे अध्याय में अभ्यास का तरीका भी बताया कि गुरु के बताये हुए अनुसार भ्रूमध्य ध्यान स्थिर करें। इस स्थिरता की परिपक्व अवस्था ही समाधी कहलाती है। जहां परम पुरुष के दर्शन होते हैं।

इस ध्यानावस्था तक पहुँचने के लिए साधक को मन में उठने वाली तरंगों पर विजय पाना आवश्यक है। जिसके लिए उपनिषदों ने बताया कि है कि –

यत्र मनो लीयते, तत्र प्राणोपि लीयते।

यत्र प्राणो लीयते, तत्र मनोपि लीयते।।

प्राण के वश में हुआ मन स्थिर हो जाता है। जैसे खूंटे से बाँधा हुआ पशु थककर विश्राम करता है।

इस कलिकाल मे जबकि ब्रह्मचर्य अपूर्ण है तथा पग पग पर कठिनाइयाँ है योग के साधन जैसे यम–नियम, आसन, प्राणायाम असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसमें सरल उपाय क्या हो सकता है। वह गुरु के बताये हुए मन्त्र को रसना पर स्थिर करके प्राणों में समावेश कर दे, प्राण और मन का एकीकरण होते ही आनन्दानुभूति होगी तथा मन स्थिर होने लगेगा। इसी साधन से गुरु चरणों का ध्यान करता हुआ साधक परम पुरुष के दर्शन कर सकेगा।

● ● ●

सूचना

सभी गुरुभाई–बहिनों को सूचित किया जाता है कि 3 जुलाई 2012 को सिद्धगुफा सवांई, एत्मादपुर आश्रम में गुरु पूर्णिमा पर्व बड़ी ही धूम धाम से मनाया जा रहा है, जिसमें आप सभी सादर आमंत्रित हैं।

इसके पश्चात् 5 जुलाई 2012 से 15 जुलाई 2012 तक **रुद्र महाअभिषेक यज्ञ** *का आयोजन आश्रम में किया जा रहा है। 15 जुलाई को यज्ञ की पूर्णाहुति होगी। सभी गुरुभाई – बहिन रुद्र महाअभिषेक यज्ञ में सादर आमंत्रित हैं।*

भवदीय

डॉ. आचार्य दासलाल ब्रह्मचारी

सम्पादक सिद्धयोग

कविता

– राजीव कुमार, अम्बिकानगर – अम्ब, ऊना, एच.पी.

जन्म दिवस गुरुदेव आपका शुभ संदेश लाया।
योग प्रचार प्रसार आगे बढ़ा गगन गुंजाया।।

श्री सिद्धगुफा में संगतों ने डेरा जमाया।
गुरुदेव की कृपा बरसी, सबका मन मुस्काया।।

छम-छम मोर भी नाचते, ऐसा आनन्द मनाया।
गुरुदेव की शक्तिपात दीक्षा ने अलख जगाया।।

श्री सिद्धयोग ने गुरुदेव का प्रचार आगे बड़ा बढ़ाया।
गुरुभाईयों की अटूट श्रद्धा ऐसा रंग चढ़ाया।।

इम्तिहान की घड़ी ने दरबार सजाया।
प्रभु स्वयं परखते! किसको कृपा पात्र बनवाया।।

एक माला के सब मनके गुरुवर की अलौकिक माया।
जिस घट शक्ति संचारित होगी वहीं बरसेगी लीलाधर की योग माया।।

फिर क्यों तेरा मन विषयों में भरमाया।
योगियों का आशीर्वाद! छूटेगा जरा मरण का साया!!

●●●

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था...

- हमें जो कुछ चाहिए वह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय: लोप हो गया है और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को दुर्बल और छोटा बना देती है।

- अपने जीवन में मैंने जो एक श्रेष्ठतम पाठ पढ़ा, वह यह कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके लक्ष्य के विषय में। ...इस एक तत्व से सर्वदा बड़े–बड़े पाठ सीखता आया हूँ और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना कि साध्य की ओर।

- अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है, तो कीट–पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? जराजीर्ण होकर थोड़ा–थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है?

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 JULY 2012

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। बाहरी एवं अन्तः प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाहरी क्रियाकलाप तो उसके गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं: UPHIN/2004/14588. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा